R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-22, अङ्क-2 फरवरी 2022 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

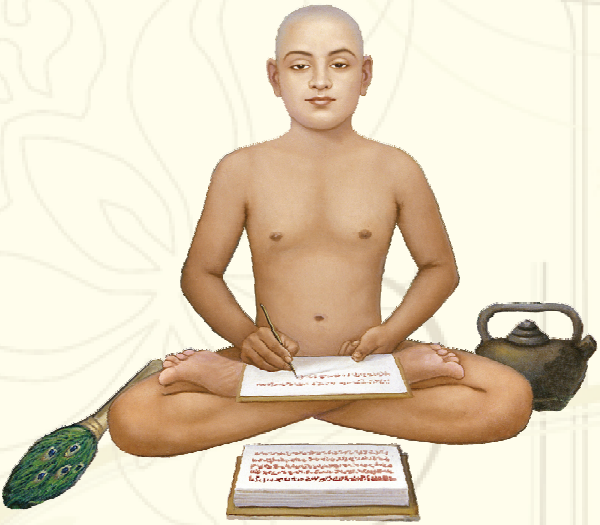

पंच परमागम प्रणेता श्री आचार्य कुन्दकुन्द

श्री बनारसीदास को भाया
सदियों पुराना परमागम हमारा
ग्रंथ समयसार.....

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन

सत्र 22-23 प्रवेश प्रारंभ

(फार्म जमा करने की अन्तिम तिथि - 15 मार्च 2022;
प्रवेश साक्षात्कार शिविर 26 मार्च से 31 मार्च 2022)

सद्धर्म प्रेमी बन्धुवर सादर जयजिनेन्द्र,

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन मङ्गलायतन में प्रवेश प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। वर्तमान युग में अपने कोमलमति बालक और युवाओं में धर्म, संस्कार एवं नैतिक शिक्षा के साथ उच्च शिक्षा देना चाहते हो तो अवश्य ही 15 मार्च 2022 तक अपने प्रवेश फार्म मङ्गलायतन ऑफिस में जमा करायें।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन लगातार उन्नति के शिखर को छू रहा है। यहाँ से निकले मङ्गलार्थी उच्च स्तर की प्रशासनिक एवं राष्ट्रीय सेवाएँ देते हुए समाज को तत्त्वज्ञान की शिक्षा दे रहे हैं। स्व-पर कल्याण करते हुए वीतरागी जिनमार्ग को घर-घर पहुँचा रहे हैं।

यदि आप भी चाहते हैं कि आज की पीढ़ी पाप के दलदल में न फँसे, सन्तोषपूर्वक आत्मकल्याण करते हुए अपना जीवन सफल करे तो अवश्य ही भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में अपने बालकों का प्रवेश करायें।

प्रवेश के योग्य अभ्यार्थी की पात्रता

(1) सातवीं कक्षा में कम से कम 60 प्रतिशत अंक से पास हो। (2) फार्म भरते समय छठी कक्षा में भी कम से कम 60 प्रतिशत अंक हों। (3) सातवीं कक्षा में अंग्रेजी माध्यम से ही पढ़ता हो। (4) शरीर में कोई असाध्य रोग न हो। (5) जैन धर्मानुसार अभक्ष्य भक्षण नहीं करता हो। (6) जैन धर्म पढ़ने की रुचि रखता हो।

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन की विशेषताएँ

(1) पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा उद्घाटित वीतरागी तत्त्वज्ञान का गहरा अध्ययन। (2) धार्मिक, नैतिक, सांस्कारिक, सामाजिक, लौकिक, पारलौकिक, आध्यात्मिक, सैद्धांतिक आदि विद्याध्ययन करने का अवसर। (3) भारत के उच्चतम स्कूल डी.पी.एस. में पढ़ने का अवसर। (4) विश्व के प्रसिद्ध विद्वानों से अध्ययन करने का अवसर। (5) चहुँमुखी प्रतिभा एवं विकास के साधन (6) डी.पी.एस. के माध्यम से विश्वस्तरीय खेल, प्रतिस्पर्धा एवं व्यक्तित्व विकास का अवसर। (7) खेल एवं संगीत शिक्षा की विशेष व्यवस्था। (8) मङ्गलायतन द्वारा देश-विदेश में तत्त्वज्ञान आराधना / प्रभावना करने का अवसर। (9) आत्मसम्मान एवं जिनधर्म की शिक्षापूर्वक उच्च आजीविका का अवसर।

शीघ्र ही आप अपने बालकों का फार्म भरकर, तीर्थधाम मङ्गलायतन के पते पर कोरियर द्वारा 1,000 रुपये के ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

कोरियर भेजने का पता —

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, तीर्थधाम मङ्गलायतन
द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरा रोड, अलीगढ़ - 202001 (उ.प्र.)
मोबा : 9756633800, 7581060200

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-22, अङ्क-2 (वी.नि.सं. 2548; वि.सं. 2078) फरवरी 2022

आचार्य कुंदकुंद....

आचार्य कुंदकुंद जो भारत में न आते
अध्यात्म समयसार कहो कौन सुनाते-2 ।।टेक ।।

रच करके कौन देता आत्म ख्याति समयसार।
ऐसे अनेक ग्रंथ भेद ज्ञान के भंडार॥
उनके बिना हृदय में शांति कौन दिलाते ।।1 ॥

जलती कषाय अग्नि सहज भाव जलाती।
कर्मों के महाबंध को आत्मा से कराती॥
शांति का सहज प्याला कहो कौन पिलाते ।।2 ॥

सम्यक्त्व बिना मोह के भववन में घुमाया।
सम्यक्त्व बिना आत्मा को उसने रुलाया॥
सम्यक्त्व आत्मा की निधि कौन बताते ।।3 ॥

है जगत के संबंध कोई पार न पाया।
है सब अनित्य, नित्य एक भी नहीं पाया॥
होता न सगा आप जिसे अपना बनाते ।।4 ॥

साभार : मङ्गल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक

स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

सम्पादक

डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सह सम्पादक

पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल

ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण

बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़

डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर

श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर

पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन

श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर

श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली

श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई

श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी

श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन

डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका

पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग

श्रीमती मंगलाबेन

नानालाल पारेख

ए-7, विवेकानन्द पार्क-3, डॉ. अम्बेडकर रोड, नेहरू मेमोरियल हॉल के सामने,

पूना - 411001 (महा.)

क्या - कहाँ

आचार्य कुन्दकुन्द..... 5

समयसार तो अशरीरी..... 10

कविवर पण्डित बनारसीदास..... 12

श्री समयसार नाटक 14

भेदज्ञान द्वारा उपशम 20

मुख्य तिथि-पर्व 24

श्रुत परम्परा एवं 25

विद्वान परिचय शृंखला 27

प्रेरक-प्रसंग 29

जिस प्रकार-उसी प्रकार 30

समाचार-दर्शन 31

शुल्क :

वार्षिक : 50.00 रुपये

एक प्रति : 04.00 रुपये

परिचय

आचार्य कुन्दकुन्ददेव

दिगम्बर जैनाचार्यों में कुन्दकुन्दाचार्य का नाम सर्वोपरि है। मूर्तिलेखों, शिलालेखों, ग्रंथ प्रशस्तिलेखों एवं पूर्वाचार्यों के संस्करणों में कुन्दकुन्दस्वामी का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिखा मिलता है।

मंगलम् भगवान वीरो, मंगलम् गौतमो गणी।
मंगलम् कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

इस मंगल पद के द्वारा भगवान महावीर और उनके प्रधान गणधर श्री गौतमस्वामी के बाद श्री कुन्दकुन्दस्वामी को मंगल कहा गया है। इनकी प्रशस्ति में कविवर वृन्दावनदासजी लिखते हैं—

हुए न, हैं न, होंहिगे मुनिंद कुन्दकुन्द से॥

इस तरह भगवान महावीर के निर्वाण पश्चात् केवली, श्रुतकेवली, अंगों व पूर्वों के ज्ञाता, अंगों व पूर्वों के एकदेश ज्ञाता—ऐसे अनेकानेक महान-महान आचार्य दिगम्बर जिनशासन में हुए हैं, फिर भी गौतम गणधर के पश्चात् उन किन्हीं आचार्यवर का नाम न लेकर भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का नाम ही मंगलाचरण में लिया जाता है—जिससे यह सूचित होता है, कि ये धर्म स्तंभरूप, महासमर्थ आचार्यवर थे। आपने ही जिनशासन की आधारशिला-स्वरूप, परमामृतमय अध्यात्म-ज्ञान से जिनशासन को इस कलिकाल में अक्षुण्णतया टिका रखा है। यह ही आपका महान उपकार है। आपके पश्चात्वर्ती आचार्य ने आपको 'कलिकाल सर्वज्ञ' भी स्वीकृत किया है। द्रव्यानुयोग के प्रधान ग्रंथ रचकर वीर शासन का शुद्धात्मानुभूति प्रधान मोक्षमार्ग व तीर्थंकरदेवों द्वारा प्ररूपित उत्तमोत्तम सिद्धान्तों को विच्छेद होने से आपने ही बचा लिया है, जिससे इस दुषमकाल में भी मोक्षमार्ग को अक्षुण्णरूप से आपने ही टिकाया है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के बारे में यह किवदंती है कि पूर्वभव में एक ग्वाला सेठ के यहाँ रहता था और गाँवों को चराने ले जाता था। गायों को चराते समय, उसने वहाँ एक मुनिराज भगवंत को ध्यान में बैठा देखा। प्रथम तो उसे लगा, कि यह कोई दरिद्री है, परंतु जब मुनिराज के दर्शन करने राजा-महाराजा-श्रेष्ठीवर्ग को आते

देखकर उसे मुनिराज में कोई अद्भुत माहात्म्य लगा। अत: वह प्रतिदिन जंगल में गायों के चरते समय मुनिराज के चरणों में बैठ जाता और मुनिभगवंत की मुद्रा मेढ़े की भाँति देखा ही करता। उसे मुनिराज की वीतरागी मुद्रा देखकर अतिशय बहुमान आने लगा। मुनिभगवंत को इस तरह बड़े भाव से निरखा करता था।

किसी एक दिन उस जंगल में आग लगी। वृक्ष सब जल गये। आग शांत होने पर वह उसी वृक्ष के पास आया, जहाँ वह मुनिराज को अक्सर देखा करता था। उसने आश्चर्य से देखा, कि उस वृक्ष को कुछ नहीं हुआ था। वृक्ष में रखे हुए ताड़पत्र पर लिखित पत्रों को वैसा ही पाया। उसको पढ़ना नहीं आता था। अत: किसी योग्य व्यक्ति को दूँगा, यह सोच वह उन ताड़पत्रों को बड़े श्रद्धाभाव से लेकर घर पर आ गया। उसे घर के एक आले में बड़े आदर से रखा। प्रतिदिन उसकी भक्ति, आरती, पूजा, अर्चना आदि करने लगा।

किसी एक दिन कोई महामुनिराज उस सेठ के घर आहार हेतु पधारे थे। सेठ ने मुनिभगवंत को नवधा भक्तिपूर्वक आहारदान देने के पश्चात् मुनिराज ने सेठ को कुछ प्रयोजनभूत तत्त्व का उपदेश दिया। उस समय ग्वाला भी वहीं था। उसने मुनिभगवंत का बड़ी श्रद्धा से आहारदान देखा। उपदेश सुना। तब उस ग्वाले ने अपने घर में विराजित ताड़पत्रों को लाकर मुनिभगवंत को दिये और कहा, 'भगवन! मैं इसे नहीं पढ़ सकता, आप इसे पढ़ सकेंगे, ऐस कहकर सारा वृतांत सुनाया।'

ऐसे मुनिराज व जिनवाणी के प्रति बड़े आदर, श्रद्धावंतता के फलस्वरूप वही ग्वाला दूसरे भव में उसी सेठ के यहाँ पुत्ररत्न के रूप में जन्मा। वह ग्वाला और कोई नहीं, पर अपने महान आचार्यवर कुन्दकुन्दाचार्यदेव थे। पूर्वभव में मुनिभगवंत तथा जिनवाणी की श्रद्धाभक्ति के फलस्वरूप उन्हें श्रुत की अपूर्व लब्धि प्राप्त हुई थी।

श्री कुन्दकुन्दस्वामी की जयघोषणा का मुख्य कारण उनके द्वारा प्रतिपादित वस्तुतत्त्व का, विशेषतया आत्मतत्त्व का विशद वर्णन है। स्वानुभूति के स्तंभ समान समयसारादि ग्रंथों में उन्होंने पर से भिन्न तथा स्वकीय गुण-पर्यायों से अभिन्न आत्मा का जो वर्णन किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने उन ग्रंथों में

अध्यात्मधाररूप जिस मंदाकिनी को प्रवाहित किया है, उसके शीतल और पावन प्रवाह को अवगाहनकर भवभ्रमण श्रांत मुमुक्षुवृंद शाश्वत शांति को प्राप्त करते हैं। उनके शास्त्र साक्षात् गणधरदेव के वचन जैसे ही प्रमाणभूत माने जाते हैं। उनके पश्चात् हुए ग्रंथकार आचार्यों ने अपना कथन सिद्ध करने के लिए कुन्दकुन्दाचार्यदेव के शास्त्रों का प्रमाण अनेक जगह दिया है, जिससे उनका कथन निर्विवाद सिद्ध होता है और उनकी परंपरा का कहलाने में पश्चात्वर्ती आचार्य अपना गौरव अनुभवते हैं।

अन्य स्थल पर ऐसा भी आता है, कि पुण्य और पवित्रता में समृद्ध ऐसे भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव को प्रकट हुई आकाशगामिनी ऋद्धि से वे सीमंधर भगवान के समवसरण में गये थे। तब चक्रवर्ती ने विस्मयता से भगवान को पूछा, कि हे नाथ। 'छोटे से देहयुक्त दिगम्बर मुनिराज ऐसे 'वे कौन हैं ?' लोग उन्हें देख ही रहे थे, उस समय प्रभु की ध्वनि में आया, कि 'ये भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य हैं।' ऐसा सुनकर जयघोष के साथ नगरी में उत्सव हुआ। सप्ताह भर प्रभु के श्रीमुख से विनिर्गत दिव्यध्वनि श्रवण करके शुद्धात्मतत्त्व आदि सारभूत अर्थों को ग्रहण व अवधारित करके आप भरतक्षेत्र में वापस आये। वहाँ श्रवण की हुई दिव्यध्वनि की खुमार में आपने प्रवचनसारादि ग्रंथों में उन सारभूत तत्त्वों को ठूंस-ठूंसकर भव्यों के लिए भर दिए। ऐसे ही भाव भगवान जयसेनाचार्यदेव ने उनकी टीका ग्रंथ में लिखे हैं।

आचार्य शुभचंद्रजी ने गुर्वावलि के अंत में लिखा है, कि श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने ऊर्जयंतगिरि में पाषाण निर्मित सरस्वती की मूर्ति को वाचाल कर दिया था, जिससे आपके गच्छ का नाम 'सारस्वत' अर्थात् 'सरस्वती गच्छ' पड़ा था। चार अंगुल पर आकाशगमन की ऋद्धि आपको प्राप्त थी। ऐसा शिलालेखों आदि में आता है।

भगवान जयसेनाचार्यदेवानुसार आप कुमारनंदि सिद्धांतिदेव के शिष्य थे। उस पर से ऐसा भी लगता है, कि कुमारनंदि सिद्धांतिदेव आपके विद्यागुरु-दीक्षागुरु हों, व भगवान जिनचंद्रस्वामी ने आपको आचार्यपदवी से सुशोभित किया हो।

'पद्मनंदी, कुन्दकुन्दाचार्य, एलाचार्य, वक्रग्रीवाचार्य और गृद्धपिच्छाचार्य'—इन पाँच नामों से आप युक्त थे। पद्मनंदी आपका दीक्षा का नाम है। आचार्य इंद्रनंदी ने आचार्य पद्मनंदी को कुंडकुंदपुर का बतलाया है। श्रवणबेलगोला के कितने ही शिलालेखों में आपका कोण्डकुंद नाम लिखा है। गुंटकल रेलवे स्टेशन से दक्षिण की ओर लगभग 8 कि०मी० पर एक कोनकुंडल नाम का स्थान है, जो अनंतपुर जिले के गुटी तालुके में स्थित है। शिलालेख में उसका प्राचीन नाम 'कोंड़कुंदे' मिलता है। यहाँ के निवासी इसे आज भी 'कोडकुंदी' कहते हैं। बहुत कुछ संभव है, कि कुन्दकुन्दाचार्य का जन्मस्थान यही हो और इसी कारण आपका नाम 'कुन्दकुन्द' रूप से प्रसिद्ध है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विदेहक्षेत्र में 'इलायची' जैसे प्रतीत होते थे। अत: आपको लोग एलाचार्य भी कहने लगे। कहा जाता है, कि शास्त्र लिखते समय आपकी ग्रीवा थोड़ी सी टेढ़ी हो गई थी, अत: लोग आपको वक्रग्रीवाचार्य भी कहते थे तथा ऐसा आता है कि विदेह जाते समय मोरपिच्छ गिर जाने से आपने 'गृद्धपिच्छों की पींछी' अंगीकार की थी। अत: आपको लोग गृद्धपिच्छाचार्य से भी जानते हैं।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव शक संवत की पहली शताब्दी के विद्वान थे। आपका गिरनार सिद्धक्षेत्र पर श्वेतांबर साधुओं से वाद हुआ था व उसमें आपने दिगम्बर जिनधर्म को प्राचीन व सत्य सिद्ध किया था।

दिगम्बर जैन ग्रंथों में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य रचित ग्रंथ अपना अलग प्रभाव रखते हैं। उनकी वर्णन शैली ही इस प्रकार की है कि पाठक उससे वस्तुस्वरूप, आत्मा और आत्मानुभव को बड़ी सरलता से ग्रहण कर लेते हैं। व्यर्थ के विस्तार से रहित, नपे-तुले शब्दों में किसी बात को कहना इन ग्रंथों की विशेषता है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी सीधी हृदय पर असर करती है।

निम्नांकित ग्रंथ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित निर्विवादरूप से माने जाते हैं तथा जैन समाज में उनका सर्वोपरि स्थान है। (1) समयसार, (2) प्रवचनसार, (3) नियमसार, (4) पंचास्तिकायसंग्रह, (5) दर्शनपाहुड़,

(6) सूत्रपाहुड़, (7) चारित्रपाहुड़, (8) बोधपाहुड़, (9) भावपाहुड़, (10) मोक्षपाहुड़, (11) लिंगपाहुड़, (12) शीलपाहुड़ आदि 84 पाहुड़, (13) वारसअणुपेक्खा, (14) भक्तिसंग्रह, (15) 12000 श्लोक प्रमाण परिकर्म (षट्खंडागम टीका), तथा रयणसार ग्रंथ भी आपका माना जाता है।

भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव ने 11 वर्ष की उम्र में भगवती जिनदीक्षा ली थी। 33 वर्ष पश्चात् शक सं. 49 (ई.स. 127) पोष कृष्ण अष्टमी को भगवान जिनचंद्रस्वामी आचार्यदेव ने चतुर्विध संघ की उपस्थिति में आचार्यपदवी से आपको अनुगृहीत किया था। पश्चात् वे 51 वर्ष 10 मास तक विराजित रहे। आपकी कुल आयु 95 वर्ष, 10 मास व 15 दिन की थी। अत: आपका काल ई.स. 127-179 माना जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी को आपके समयसार शास्त्र की ऐसी रुचि हुई, कि समयसार मिलने की अल्पावधि में ही उन्होंने निर्मल स्वानुभूति प्राप्त की। इतना ही नहीं, आपके ग्रंथों पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने किए प्रवचनों की अद्‌भुत प्रभाव से, समग्र भारतवर्ष का जैन समाज यत्किंचित् अपने पुरुषार्थ अनुसार आत्म-हित में रुचिवंत बन रहे हैं। यह सब भगवान कुन्दकुन्ददेव का ही उपकार है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के ही धर्मतीर्थ को कहानगुरु ने चेतनवंत बनाया।

ऐसे महासमर्थ भावलिंगत्व के तादृशस्वरूप
भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव को कोटि-कोटि वंदना।

जानाति यः स न करोति करोति यस्तु
जानात्ययं न खलु तत्किल कर्मरागः।
रागं त्वबोधमयमध्यवसाय माहु-
मिर्थ्यादृशः स नियतं स च बंधहेतुः॥

अर्थात् जो जानता है, सो करता नहीं और जो करता है, सो जानता नहीं। करना तो वास्तव में कर्म का राग है और राग को अज्ञानमय अध्यवसाय कहा है; जो कि वह नियम से मिथ्यादृष्टि के होता है और वह बन्ध का कारण है।

समयसार कलश 167

समयसार तो अशरीरी होने का शास्त्र है

(आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी इस युग में समयसार के सर्वाधिक गहन अध्येता और प्रबल प्रचारक रहे हैं। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समयसार के रहस्य को समझने व समझाने में ही लगाया है। अत: समयसार के सम्बन्ध में समय-समय पर व्यक्त हुए उनके विचार बहुत महत्त्व रखते हैं।

यों तो समयसार पर हुए उनके प्रवचनों के छोटे-बड़े अनेक संस्करण पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित होकर आ चुके हैं, जिनमें समयसार की पंक्ति-पंक्ति पर गंभीर, विशद एवं आगमानुकूल प्रकाश डाला गया है; तथापि समयसार के अध्ययन और अनुभव की आत्महितकारी प्रेरणा जन-जन को मिल सके - इस पावन भावना से समयसार के महिमावाचक उनके कतिपय हृदयोद्‌गार हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। - जैनपथ प्रदर्शक, १९८९)

यह समयसार शास्त्र आगमों का भी आगम है; लाखों शास्त्रों का सार इसमें है; जैनशासन का यह स्तम्भ है; साधक की यह कामधेनु है, कल्पवृक्ष है। इसकी हर एक गाथा छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हुए महामुनि के आत्म-अनुभव से निकली हुई है। इस शास्त्र के कर्ता भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेह क्षेत्र में सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमंधर भगवान के समवसरण में गये थे और वहाँ आठ दिन रहे थे - यह बात यथातथ्य है, अक्षरश: सत्य है, इसमें लेशमात्र भी शंका के लिए स्थान नहीं है। उन परम-उपकारी आचार्य भगवान द्वारा रचित समयसार में तीर्थंकरदेव की निरक्षर ॐकार-ध्वनि में से निकला हुआ ही उपदेश है।

समयसार ने हमारा जीवन बदल डाला, अत: उसके प्रति हमारी विशेष भक्ति होना स्वाभाविक है। समयसार १९ बार तो हमने सभा में पढ़ा है, वैसे सैकड़ों बार उसका दोहन किया है। भाई! अपूर्व शास्त्र है, अपूर्व! उसकी महिमा हम कहाँ तक गायें, जितनी कहें थोड़ी है।

भाई! समयसार में बहुत गंभीरता है। यह तो जगत्‌चक्षु है। यह भगवान की साक्षात् दिव्यध्वनि में से आया हुआ शास्त्र है। संवत् १९७८ की साल में जब समयसार हाथ में आया, तब इसे पढ़कर ऐसा लगा कि **'यह शास्त्र तो अशरीरी होने की चीज है।'** इसका स्वाध्याय खूब धैर्य से प्रतिदिन करना चाहिए।

यह समयसार नामक परम अध्यात्मशास्त्र है। यहाँ (सोनगढ़ में) यह सभा में अठारहवीं बार पढ़ा जा रहा है। इसका एक भी शब्द सुनकर उसका यथार्थ भाव समझ ले तो कल्याण हो जाये - यह ऐसी अद्‌भुत वस्तु है।

सम्पूर्ण समयसार में शुद्धनय द्वारा चैतन्यमयी ध्रुव शुद्धात्मा का स्वरूप बताया गया है, क्योंकि वही एक सारभूत पदार्थ है।

आहाहा! अजोड़ शास्त्र है, जगत का सौभाग्य है कि ऐसा शास्त्र नष्ट होने से बच गया और आदि से अन्त तक पूर्ण प्राप्त हो गया।

यह समयसार अर्हत्-प्रवचनों का अवयव अर्थात् अंश है। कैसा है यह अंश? अनादि-निधन परमागम शब्दब्रह्म से प्रकाशित है, सर्व-पदार्थों के समूह को साक्षात् जाननेवाले केवली भगवान सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत है।

अहो! अरहंतदेव की ओंकार ध्वनि का सार-सार लेकर श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने परमागम को इस ग्रंथ में भर दिया है। एक समयसार में अभेद, अखण्ड निर्मलानन्द जो आत्मवस्तु है, वह भूतार्थ है, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और वीतरागी शान्ति की प्राप्ति रूप प्रयोजन की सिद्धि होती है।

(सवैया इकतीसा)

कुंदकुंदाचारिज प्रथम गाथाबद्ध करि,
समैसार नाटक विचारि नाम दयौ है।
ताही की परंपरा अमृतचंद्र भये तिन,
संसकृत कलस सम्हारि सुख लयौ है॥
प्रगट्यौ बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब,
किये हैं कवित्त हियै बोधिबीज बयौ है।
सबद अनादि तामैं अरथ अनादि जीव,
नाटक अनादि यौं अनादि ही कौ भयौ है ॥8॥

अर्थात्— इसे पहले स्वामी कुंदकुंदाचार्य ने प्राकृत गाथा छंद में रचा और समयसार नाम रखा। उन्हीं की कृति पर उन्हीं के आम्नायी स्वामी अमृतचंद्रसूरि संस्कृत भाषा के कलश रचकर प्रसन्न हुए। पश्चात् श्रीमाल जाति में पंडित बनारसीदासजी श्रावकधर्म प्रतिपालक हुए, उन्होंने कवित्त रचना करके हृदय में ज्ञान का बीज बोया। यों तो शब्द अनादि है, उसका पदार्थ अनादि है, जीव अनादि है, नाटक अनादि है, इसलिए नाटक समयसार अनादि काल से ही है। (समयसार नाटक, प्रशस्ति कवित्त 8)

परिचय

कविवर पण्डित बनारसीदासजी

कविवर पण्डित बनारसीदासजी अध्यात्म और काव्य दोनों ही क्षेत्रों में सर्वोच्च प्रतिष्ठा-प्राप्त रस सिद्ध कवि और आध्यात्मिक विद्वान हैं। आप महाकवि तुलसीदासजी के समकालीन, सत्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्धतम विद्वानों में से एक हैं।

आपका जन्म श्रीमालवंश में लाला खरगसेन के घर विक्रम संवत् 1643 की माघ शुक्ल एकादशी, रविवार को जौनपुर नगर में हुआ था। जन्म के समय आपका नाम विक्रमजीत रखा गया था; बाद में बनारस यात्रा के समय पार्श्वनाथ भगवान की जन्मभूमि वाराणसी के नाम पर आपका नाम बनारसीदास हो गया। आप अपने माता-पिता के इकलौते सुपुत्र थे।

आपने-अपने जीवन में अत्यधिक उतार-चढ़ाव देखे हैं। आपका जीवन आर्थिक विषमताओं से तो परिपूर्ण है ही, पारिवारिक विषमताओं से भी सम्पन्न है। आपके तीन विवाह हुए; सात पुत्र और दो पुत्रियाँ—इस प्रकार नौ सन्तानें हुईं; परन्तु एक भी आपके सामने ही जीवित नहीं रहीं। इस घटना को आपने अपने अर्धकथानक नामक आत्मचरित में इस प्रकार लिखा है—

कही पचावन बरस लौं, बानारसि की बात।
तीनि विवाहीं भारजा, सुता दोइ सुत सात॥
नौ बालक हुए मुए, रहे नारि नर दोइ।
ज्यों तरुवर पतझार ह्वै, रहे ठूँठ से होई॥

ऐसी विषम परिस्थिति में भी वस्तु-स्वरूप के चिन्तन-मनन तथा आत्मानुभवन के बल पर आप विचलित नहीं हुए। आप अपने प्रारम्भिक जीवन में अनेक बार विविध अंधविश्वासों के भी शिकार हुए तथा आध्यात्मिक रुचि सम्पन्न होने के बाद आपने पूरी दृढ़ता से अपने साहित्य में उन अन्धविश्वासों का तीव्रतम खण्डन भी किया है। आप प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के धनी थे।

विवेक जागृत होने के बाद आप उस आध्यात्मिक क्रान्ति के जन्मदाता हुए, जो तेरापंथ के नाम से जानी जाती है तथा जिसने जिनमार्ग पर छाए भट्टारकवाद पर दृढ़ता से प्रहार कर, उसकी जड़ें कमजोर कर दीं और जो आगे बढ़कर आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी का संस्पर्श पाकर उत्तर भारत में फैल गई। काव्य प्रतिभा आपको जन्म से ही प्राप्त थी। जीवन की किशोरावस्था में ही आप

उच्चकोटि की कविता करने लगे थे; परन्तु प्रारम्भ में आप शृंगारिक कविता में मग्न रहे। चौदहवें वर्ष में आपकी सर्वप्रथम कृति 'नवरस' तैयार हो गयी थी। शृंगार रस की अद्‌भुत उत्कृष्ट इस कृति को आपने स्वयं ही आत्म-ज्ञान होने के बाद गोमती नदी के प्रवाह में प्रवाहित कर दिया। इसके बाद आपने पूर्णतया आध्यात्मिक साहित्य की रचना की। नाटक समयसार, बनारसी विलास, नाममाला और अर्धकथानक आपकी वर्तमान में उपलब्ध कृतियाँ हैं।

नाटक समयसार—यह एक प्रकार से अमृतचन्द्राचार्य के समयसार कलशों के भावात्मक पद्यानुवादमय कृति है; तथापि अपनी मौलिक विशेषताओं के कारण इस ग्रन्थ का अध्ययन करते समय स्वतन्त्र ग्रंथ के समान ही आनन्द प्राप्त होता है। आध्यात्मिक रस से परिपूर्ण होने के साथ ही इस ग्रन्थ में चौदह गुणस्थानों का और ग्यारह प्रतिमाओं का मार्मिक विवेचन किया गया है।

अर्धकथानक—यह हिन्दी भाषा का सर्वप्रथम आत्मचरित्र है। तत्कालीन आर्थिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, परिस्थितियों को तथा आपके पचपन वर्षीय जीवन को दर्पणवत प्रतिबिम्बित करनेवाली यह प्रौढ़तम कृति है। इस कृति का नामोल्लेख गिनीज बुक में भी है। पुण्य-पाप के उदय सम्बन्धी सांसारिक विचित्रताओं, उनमें ज्ञानी जीवों की मनोवृत्तियों की जानकारी के लिए तथा विविधताओं से युक्त पण्डित बनारसीदासजी के जीवन से परिचित होने के लिए इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

बनारसीविलास—यह ग्रंथ कवि की छोटी-बड़ी गद्य-पद्यात्मक विविध रचनाओं का संग्रह ग्रंथ है।

नाममाला—धनंजय कवि कृत नाममाला का अनुकरण करते हुए बनाया गया, यह हिन्दी भाषा का शब्दकोश है।

जैन अध्यात्म के क्षेत्र में तो पण्डित बनारसीदासजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है ही; हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी उनका योगदान असंदिग्ध है। मात्र आवश्यकता इस बात की है कि धार्मिक पक्षपात से रहित होकर विचार, भाव, भाषा, साहित्यिक उपादान आदि दृष्टियों से इनके साहित्य का गम्भीरतम अध्ययन किया जाये।

इस प्रकार पण्डित बनारसीदासजी अपने आत्मसाधना और काव्यसाधना—दोनों ही क्षेत्रों के अनुपम व्यक्ति रहे हैं।

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

ज्ञाता की अवस्था

अब 27वें कलश का 30वां काव्य है, जिसमें कवि निश्चय और व्यवहारनय की अपेक्षा से शरीर और जिनवर में भेद बताते हैं–

निश्चय और व्यवहारनय की अपेक्षा शरीर और जिनवरका भेद

तन चेतन विवहार एकसे,
निहचै भिन्न भिन्न हैं दोइ।
तनकी थुति विवहार जीवथुति,
नियतदृष्टि मिथ्या थुतिसोइ।।
जिन सो जीव जीव सो जिनवर,
तन जिन एक न मानै कोइ।
ता कारन तनकी संस्तुतिसौं,
जिनवरकी संस्तुति नहि होइ।।30।।

अर्थः– व्यवहारनय से शरीर और आत्मा की एकता है, परन्तु निश्चयनयमें दोनों जुदे-जुदे हैं। व्यवहारनय में शरीर की स्तुति जीव की स्तुति गिनी जाती है परन्तु निश्चयनय की दृष्टि से वह स्तुति मिथ्या है। निश्चयनय में जो जिनराज है वही जीव है और जो जीव है वही जिनराज है, यह नय शरीर और आत्मा को एक नहीं मानता इस कारण निश्चयनय से शरीर की स्तुति जिनराज की स्तुति नहीं हो सकती।।30।।

काव्य – 30 पर प्रवचन

चैतन्य भगवान आनन्द का सागर है और शरीर के रजकण तो उससे अत्यन्त भिन्न है। 'अध्यात्म तरंगिणी' में आया है कि मात्र लोक व्यवहार से शरीर और आत्मा को एक कहा जाता है, वस्तुतः वे एक नहीं हैं। कोई मूढ़ जीव ऐसा मानते हैं कि शरीर के सहारे के बिना तो विचार भी नहीं हो सकता। जैसा स्वयं को रुचता है, वैसा मान लेते हैं; परन्तु सत्य क्या है यह समझने की दरकार भी नहीं करते हैं। आत्मा ज्ञानानन्द से भरा है और शरीर तो जड़ता से भरा है। दोनों अत्यन्त

भिन्न-भिन्न हैं। अत: शरीर के बखान-गुणगान करने से आत्मा की स्तुति नहीं होती है। मात्र लौकिक व्यवहार से ही उसको जीव की स्तुति कहा जाता है। वस्तुत: तो विकल्प सहित की स्तुति भी वास्तविक स्तुति नहीं है। सर्वज्ञ परमेश्वर की तरफ का विकल्प है, वह भी व्यवहार स्तुति है, सच्ची स्तुति नहीं है। निश्चय से देखो तो व्यवहार झूठा है।

'जिन सो जीव जीव सो जिनवर'। अकेला वीतरागी गोला वह जिन है, वही जीव है। वह शरीर और रागरूपी काया से भिन्न है। राग भी काया है, जीव नहीं। शरीर की स्तुति से आत्मा की स्तुति नहीं होती। जीव सो जिनवर है और जिनवर जीव है। अत: व्यवहार से की गई स्तुति निश्चय से झूठी है। व्यवहारनय अन्यथा कहता है।

अरे ! जिसको अरिहन्त के स्वरूप का पता नहीं, उसे तो आत्मा की भी खबर ही नहीं है; क्योंकि जैसा अरहन्त ने प्रकट किया है, वैसा ही यह आत्मा है। शरीर तो आत्मा है ही नहीं; परन्तु राग भी आत्मा नहीं है। शरीर और राग से रहित अकेला वीतरागी बिम्ब वह आत्मा है। अत: शरीर की स्तुति से जिनवर की स्तुति नहीं होती है।

अब अट्ठाईसवें कलश का 31 वाँ काव्य कहते हैं। उसमें पण्डित बनारसीदासजी वस्तुस्वरूप की प्राप्ति में गुप्त लक्ष्मी का दृष्टान्त देकर समझाते हैं। कवि ने कैसे सरस पद्य बनाये हैं !

वस्तु स्वरूप की प्राप्ति मे गुप्त लक्ष्मी का दृष्टान्त

ज्यौं चिरकाल गड़ी वसुधामहि,
भूरि महानिधि अंतर गूझी।
कोउ उखारि धरै महि ऊपरि,
जे दृगवंत तिन्हैं सब सूझी।।
त्यौं यह आतमकी अनुभूति,
पड़ी जड़भाउ अनादि अरूझी।
नै जुगतागम साधि कही गुरु,
लच्छन-वेदि विचच्छन बूझी।।31।।

अर्थ:- जिस प्रकार बहुत समय से पृथ्वी के अंदर गड़े हुए बहुतसे धन को

उखाड़कर कोई बाहर रख देवे तो नेत्रवानों को वह सब दिखने लगता है उसी प्रकार अनादि काल से अज्ञानभाव में दबी हुई आत्मज्ञान की सम्पदा को श्रीगुरुने नय, युक्ति और आगम से सिद्ध कर समझाया है, उसे विद्वान लोग लक्षण से पहिचानकर ग्रहण कहते हैं।

विशेष:- इस छन्दमें 'दृगवंत' पद दिया है, सो जिस प्रकार बाहर निकाला हुआ धन भी नेत्रवालों को ही दिखता है- अंधोंको नहीं दिखता, उसी प्रकार श्रीगुरु द्वारा बताया हुआ तत्त्वज्ञान अंतर्दृष्टि भव्यों को ही प्राप्त होता है, दीर्घ संसारी और अभव्यों की बुद्धि में नहीं आता।।31।।

काव्य - 31 पर प्रवचन

यह तो दृष्टान्त दिया है कि करोड़ो-अरबों की लक्ष्मी दबी हुई थी। उसे कोई बाहर निकालकर रख दे तो आँखवाले हों वे उसे देख सकते हैं, अंधे हों तो नहीं देख सकते। अभी लोगों को पैसे की ममता बहुत बढ़ गई है। करोड़ तो गिनती में कम पड़ते हैं। दस-बीस करोड़ अथवा अरबों रुपये चाहिए। इसको तो मात्र गिनती करनी है। आत्मा को पैसे का कहाँ काम है?यहाँ तो दूसरा कहना है कि कोई दबे हुए धन को बाहर निकालकर रखे तो नेत्रवान उसको देख सकते हैं। उसीप्रकार अनादिकाल से अज्ञान में दबी हुई आत्मज्ञान की सम्पत्ति को ज्ञानी गुरु स्वयं अनुभव करके अन्य को भी नय, युक्ति और आगम से सिद्ध करके बताते हैं कि शरीर, कर्म और राग की एकता में आत्मा की सम्पत्ति दब गई है, तो वह (शिष्य) शरीर, कर्म और राग की एकताबुद्धि तोड़कर आत्मा का अनुभव करके अपनी अनन्त सम्पत्ति को देखने लगता है, अनुभव करता है। ऐसा अनुभव हमनें किया था, तुम भी करो। तब वह आत्मा की दृष्टि करता है। उसको आत्मा की सम्पत्ति का अनुभव होता है।

जो आत्मा के स्वभाव को अनुसरकर आत्मा का निर्विकल्प अनुभव करता है, उसने आत्मा की सम्पत्ति नजरों से देख ली है। मेरा आत्मा सत्चिदानन्द पूर्ण प्रभु है ऐसा उसकी दृष्टि में आ जाता हैं। 'जे दृगवंत तिन्हैं सब सूझी' अर्थात् दृष्टिवंत जीव आत्मा को देख लेता है।

श्रीगुरु किसप्रकार लक्ष्मी बताते हैं? कि प्रभु! तेरा स्वभाव तो अनन्त आनन्द और केवलज्ञान का धाम है। राग तो तेरा स्वरूप नहीं; परन्तु अल्पज्ञपना

भी तेरा स्वरूप नहीं है ऐसा निश्चयनय की युक्ति द्वारा गुरु बताते हैं कि देख ! तेरा आत्मा ऐसा है। उसकी अनुभूति ही ज्ञान है। गुरु को स्वयं को 'यह मेरा आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है' ऐसी सूझ पड़ी है; अत: दूसरों को समझाते हैं कि देखो ! इसप्रकार चैतन्य लक्ष्मी प्राप्त होने योग्य है। तब जो स्वयं समझे उसको वस्तु प्राप्त होती है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है कि जो स्वाश्रय द्वारा वीतरागी भगवान आत्मा का अनुभव करता है, वह दिगम्बर है, पण्डित है। रजकण और राग के अंश से रहित अपनी ईश्वरीय सत्ता स्वयं ही है। स्वयं पूर्णज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति आदि अनन्त शक्तियों का संग्रहालय है। उसके बदले अज्ञानी पैसे, कपड़े और मकान आदि का संग्रह करके उससे अपनी महानता मानने लगा है; परन्तु इन सबसे निवृत्त होकर अपने निवृत्ति घर (चैतन्यस्वभाव) में देखे तो अनुभूति से आत्मा ज्ञात होने योग्य है। अन्य व्यवहार विकल्पों से दया-दान-भक्ति से आत्मा ज्ञात होने योग्य नहीं है।

यह एक ही मार्ग है। सर्वज्ञ-वीतराग त्रिलोकनाथ अनन्त तीर्थंकर एक ही स्वर में यह मार्ग कह गये हैं। तेरा आत्मा अन्दर में विराजमान है, उसके सामने देख ! उसका अनुभव कर तो तुझे आत्मा की लक्ष्मी प्रतीति में आयेगी। तू अपने सन्मुख दृष्टि न करे तो लक्ष्मी होने पर भी उसकी प्रतीति और अनुभव नहीं होगा।

"सहजे समुद्र उल्लस्यो, मही मोती तणाता जाए।
भाग्यवान कर वापरे, एनी मूठी मोतीए भराये"

उसीप्रकार यहाँ कहते हैं कि बहुत समय से दबी हुई लक्ष्मी को निकालकर कोई बाहर रखे तो आँखवाला हो वह उसको देख लेता है। उसीप्रकार श्रीगुरु आत्मा की लक्ष्मी को खुल्ला (प्रसिद्ध) करते हैं कि भाई ! तू तो पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, स्वच्छता, वीतरागता का नाथ है। तू अपूर्ण, रागवाला और शरीरवाला नहीं है। अत: वैसा अपने को मत मान ! तू अपने को अनन्त-अनन्त आनन्द का नाथ जान; इसप्रकार जो गुरु की वाणी सुनकर सावधान होता है अर्थात् जिसकी आँख खुल जाती है, जो स्वभाव का लक्ष्य करता है, उसको चैतन्य की सम्पत्ति दिख जाती है।

श्रीगुरु ने नय, युक्ति और आगम से सिद्ध करके समझाया है कि आत्मा एक

वस्तु है, उसमें पूर्ण ज्ञान और आनन्द है। वह एकरूप है इसलिए पूर्ण है–ऐसी निज वस्तु की दृष्टि करने से तुझे आत्मा की लक्ष्मी प्राप्त होगी। यह आगम में भगवान ने भी कहा है, युक्ति से भी यह बात सिद्ध होती है और निश्चयनय भी ऐसा ही जानता है।

दु:खी–थके हुए, सुख के लिए तरसते जीव सुख के लिए परपदार्थ और पुण्य–पाप के विकल्प में आत्मा को खोजने जाते हैं; परन्तु श्रीगुरु कहते हैं कि वहाँ आत्मा नहीं मिलेगा। बापू! मृग भले ही दौड़े; परन्तु मृगमरीचिका में उसको जल नहीं मिलेगा। उसीप्रकार कुगुरु तुझे जो मार्ग बताते हैं, वहाँ आत्मा नहीं मिलेगा। प्रभु तू लुट जायेगा। भाई! उसमें तेरी लक्ष्मी खो जाती है। यहाँ तो श्रीगुरु आगम, युक्ति और नय से समझाते हैं, उसे विचक्षण जीव लक्षण से पहिचानकर तत्त्व को ग्रहण कर लेता है।

विचक्षण किसे कहना? कि जिसको चैतन्य में दृष्टि होती है और अनुभव कर लेता है वह विचक्षण अर्थात् चतुर है। अन्यथा जगत में जो चतुर गिने जाते हैं, वह तो संसार के परिभ्रमण में गहरे उतरनेवाले हैं। जैसे मृगमरीचिका में वास्तविक पानी नहीं मिलता; उसीप्रकार पुण्य–पाप के क्रियाकाण्ड और राग में आत्मा नहीं मिलता। प्रभु! ये तो मृगमरीचिका (रेतीली चमक) का पानी है। तू अनन्तकाल से ऐसे ही ठगाया है और जहाँ समझने का अवसर आया, वहाँ 'जैसे लक्ष्मी तिलक करने आवे और राजा मुँह फेर ले', उसप्रकार तू मुँह मत फेर। ऐसी तत्त्व की सत्य बात अनन्तकाल में भी मिलना मुश्किल है। बापू! श्रीगुरु नय से समझाते हैं। भाई! व्यवहार तो झूठा है। रागादि विकल्प वह व्यवहार है। तेरा परमेश्वर स्वरूप ही सत्य है यह नय से सिद्ध किया, युक्ति से कहते हैं कि वस्तु होती है वह पूर्ण ही होती है और आगम भी निश्चय से वस्तु को शुद्ध ही बताता है।

'लच्छन–वेदि विलच्छन बूझी'–लक्षण उसे कहते हैं जो लक्ष्य को पहुँचे–प्रसिद्ध करे। ऐसे लक्षण को जाननेवाले विचक्षण भव्यजीव लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं।

विशेष:– 'दृगवंत' पद से यह कहना है कि विद्यमान ऋद्धि भी अंधे को नजर नहीं आती, आँखवाले को ही दिखती है। उसीप्रकार श्रीगुरु द्वारा बताने में आया हुआ तत्त्वज्ञान अन्तर्दृष्टि भव्यों को ही प्राप्त होता है। बहिर्दृष्टि छोड़कर

ज्ञानानन्दधाम में झुकाव होने पर अन्तर्दृष्टि से अन्तर लक्ष्मी का भान होता है। बहिर्दृष्टिपूर्वक बालव्रत और बालतप करनेवाले को अन्तरात्मा का भान नहीं होता।

यह सोनगढ़ की बात नहीं है बापू! यह तो वीतराग की बात है। इसके अतिरिक्त अन्य तुझे विपरीत रास्ते ले जाते हैं। भाई! उपवास के नाम पर तूने लंघन तो बहुत किये। अब शुद्ध ज्ञानानन्द के दरिया के पास जाकर उसमें वास कर तो वास्तविक उपवास होगा, अन्यथा राग में रहना तो अपवास-आठोवास है।

सम्प्रदाय में एक दृष्टान्त आता था कि शिकारी हिरण को शिकार के लिये एक तरफ दौड़ा ले जा रहा था, वहाँ कोई दयालु हिरण को बचाने के लिए दूसरी दिशा में बुलाता है; परन्तु हिरण शंका करके वहाँ नहीं जाता। देखो, शंका करने योग्य है वहाँ शंका नहीं करता और शंका करने योग्य नहीं वहाँ शंका करके शिकारी के द्वारा पकड़ा जाता है। उसीप्रकार विपरीत मार्ग में दौड़ते हुए जीवों को श्रीगुरू सत्य मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं- भाई! तेरी वस्तु ऐसी है कि उसकी प्राप्ति के लिये तुझे किसी की आवश्यकता नहीं है। अरे! हमारी भी आवश्यकता नहीं है। तू अपने से ही पूर्ण है।

श्रोता:- यहाँ तो नय, प्रमाण, युक्ति आदि की अपेक्षा बतायी है न.. ?

पूज्य गुरुदेवश्री:- इन नय, प्रमाण द्वारा यह बताया है कि तू तेरा आश्रय ले, अन्य का आश्रय छोड़! गुरु तो ऐसा कहते हैं कि हमारे सामने देखने से भी आत्मा ज्ञात नहीं होगा।

जो दीर्घ संसारी है अर्थात् जिसको अनन्त काल तक संसार परिभ्रमण करना शेष है, उसको परिभ्रमण से रहित ऐसा स्वाभाव दृष्टि में नहीं आता। अभव्य को भी यह सत्य समझ में नहीं आता। अभव्य तो लायक ही नहीं है; परन्तु भव्य को भी मिथ्यात्व के कारण दीर्घ संसार है। अहो! जिनवर समान जीव की दृष्टि और संभाल नहीं करनेवाला जीव दीर्घ संसार में भ्रमण करता है। उसकी बुद्धि में सत्य ख्याल में नहीं आता।

अरे! हथेली पर रखे आँवले की तरह श्रीगुरु वस्तु का स्वरूप बताते हैं तो ऐसा ज्ञान किसको नहीं होगा? क्यों नहीं होगा? दीर्घ संसारी है, उसकी बात अलग है। वरना लायक जीवों को तो उसका ज्ञान हुए बिना नहीं रहता-होता ही है।

क्रमशः

भेदज्ञान द्वारा उपशम की प्राप्ति

[समयसार सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के प्रवचनों से]

आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप है; ज्ञान का स्वभाव पर से उदासीन रहकर, स्वयं स्व-पर को जाने ऐसा है। ऐसे ज्ञान को भूलकर, अज्ञानी परज्ञेयों को इष्ट अनिष्ट समझकर राग-द्वेष करता है। उसे यहाँ समझाते हैं कि हे भाई! सामनेवाले पदार्थ कहीं तुझसे ऐसा नहीं कहते कि तू हमारी ओर देख। ज्ञेयों में प्रमेय स्वभाव है, परंतु तुझे राग-द्वेष करायें, ऐसा स्वभाव उनमें नहीं है; और तेरे ज्ञान का स्वभाव भी ऐसा नहीं है कि ज्ञेयों में जाकर उनका ग्रहण करे। ज्ञेयों से उदासीन-पृथक् रहकर ही ज्ञान जानता है।

बाह्य संयोग अनुकूल हों या प्रतिकूल, वे आत्मा के ज्ञान में अकिंचित्कर हैं। आत्मा उन संयोगों का स्पर्श नहीं करता और संयोग आत्मा का स्पर्श नहीं करते। जगत में अनंत द्रव्य एक क्षेत्र में स्थित होने पर भी वे एक-दूसरे को चूमते नहीं हैं, स्पर्श नहीं करते; परस्पर एक-दूसरे को छूते भी नहीं हैं, तो वे एक-दूसरे का क्या करेंगे ?

यह निंदा के शब्द, कुरूप, दुर्गंधादि मुझे ठीक नहीं है—ऐसा समझकर अज्ञानी उसके प्रति द्वेष करता है; परंतु ज्ञानी उसे समझाते है कि भाई! वे शब्द-रूप-गंध आदि कहीं तेरे ज्ञान का स्पर्श नहीं करते फिर वे तुझे अच्छे या बुरे कैसे हो सकते हैं ? वे परद्रव्य कहीं तुझमें दोष उत्पन्न नहीं करते कि तू उन पर क्रोध करता है। तथा वे परद्रव्य कहीं तुझमें गुण उत्पन्न नहीं करते कि तू उन पर अनुरंजित होता है। परद्रव्य के प्रति व्यर्थ ही राग-द्वेष करके तू अपने ज्ञान को भूल रहा है और उपशांत-रस के बदले आकुलता का ही उपभोग कर रहा है।

तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय तुझमें, पर के द्रव्य-गुण-पर्याय पर में। ऐसे वस्तुस्वरूप को जानकर, स्व-पर की भिन्नता का भेदज्ञान करके, ज्ञान उपशमभावरूप परिणमित हो, वह शास्त्रों का तात्पर्य है। ऐसा उपशमभाव यदि प्रगट न करे तो उसका सब ज्ञातृत्व निष्फल है; ज्ञान का जो फल है, उसे वह नहीं जानता।

अपने को इष्ट न लगती हो, ऐसी वस्तु ज्ञान में ज्ञात होने से, अज्ञानी तो ऐसी मिथ्याबुद्धि करता है कि मानों वह वस्तु ज्ञान में घुसकर ज्ञान को बिगाड़ रही हो!

परंतु भाई, सर्वज्ञ के ज्ञान में क्या ज्ञात नहीं होता ? सब कुछ ज्ञात होता है; और फिर भी उस ज्ञान में किंचित् राग-द्वेष होते हैं ?-नहीं होते। यदि पदार्थ ही इष्ट-अनिष्ट होकर राग-द्वेष कराने लग जायें, तब तो सर्वज्ञ के ज्ञान में भी राग-द्वेष हों! क्योंकि सर्वज्ञ तो सभी को जानते हैं; परंतु ज्ञान में, परद्रव्य, राग-द्वेष नहीं है, सर्वज्ञ का ज्ञान, सर्व ज्ञेयों को जानते हुए भी सर्वत्र उदासीन हैं, कहीं भी आसक्त नहीं है, उसीप्रकार प्रत्येक आत्मा का ज्ञानस्वभाव राग-द्वेष रहित है, पर से उदासीन है; ज्ञान की स्वच्छता में, परज्ञेय ज्ञात भले हों, परंतु उससे कहीं वे ज्ञान में राग-द्वेष नहीं करते। अहा, कितना स्वतंत्र ज्ञान!! उस ज्ञान को पर में कहीं राग-द्वेष करके अटकना नहीं होता। ज्ञान तो अपने स्वरूप से ज्ञाता ही है। राग को जाननेवाला रागरूप परिणमित नहीं होता, वह तो ज्ञानरूप ही परिणमित होता है।

अरे, तुझे यह क्या हुआ है कि ज्ञान की शांत-उदासीन दशा के बदले तू राग-द्वेष में वर्त रहा है ? स्व-पर की अत्यंत भिन्नता हमने बतलायी, उसे सुनकर भी तू उपशम को प्राप्त क्यों नहीं होता ? परज्ञेय कहीं तुझे जबरन नहीं खींचता और तेरा ज्ञान भी कहीं आत्मा को छोड़कर परज्ञेय में नहीं जाता। ज्ञान पर को जाने, उसका कहीं निषेध नहीं है; परंतु उस समय अज्ञानी अपने ज्ञान का ज्ञानत्व चूक जाता है और पदार्थों को, राग-द्वेष को तथा ज्ञान को एकमेक रूप मानता है, इसलिये भिन्न ज्ञान के शांत, अनाकुल, चैतन्यरस का वह अनुभवन नहीं करता।

एक ओर सिद्ध भगवंत तथा अरिहंत-तीर्थंकर-गणधरादि का समूह विराजमान हो, दूसरी ओर धर्म के द्रोही मिथ्यादृष्टि और तीव्र पाप करनेवाले जीवों का समूह हो; वहाँ गुणीजनों के प्रति सहज ही साधक धर्मात्मा को प्रमोद एवं भक्ति आती है; परंतु वे गुणीजन कहीं ज्ञान को, राग करने के लिये नहीं कहते; और दुर्जनों का समूह जगत में हो, वह कहीं ज्ञान को, द्वेष करने के लिये नहीं कहता, अर्थात् किसी भी पदार्थ के कारण तो राग-द्वेष है ही नहीं। अब रही अपने में देखने की बात; अपने में भी ज्ञान का स्वरूप तो कहीं राग-द्वेष करने का नहीं है। ज्ञान अपने में से बाहर नहीं जाता; इसलिये ज्ञान, राग-द्वेष का कारण नहीं है।—इसप्रकार राग-द्वेष का कारण न तो कहीं पर में है, न ही अपने ज्ञान में है; इसलिये ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता का ऐसा वस्तुस्वरूप जो जानता है, वह समस्त ज्ञेयों से अत्यन्त उदासीन वर्तता हुआ अवश्य उपशम को प्राप्त होता है। अरे, ऐसी वीतरागी बात लक्ष में आने पर भी, जो उपशम को नहीं होता और पर

में इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष करता है, वह मूढ़-दुर्बुद्धि है। भाई, ऐसा वस्तुस्वरूप जानने पर भी तू क्यों अपने ज्ञानस्वभाव की ओर नहीं ढलता? जैसे पर की मिठास है, वैसी ही अपने ज्ञान की मिठास तुझे क्यों नहीं आती? भाई, ज्ञान के वीतरागी स्वभाव को जानकर उस ओर उन्मुख हो... और शांतभाव को प्राप्त कर।

चैतन्यमय आत्मा अपने चेतन गुण-पर्यायों में ही वर्तता है परंतु उनसे बाहर नहीं वर्तता। और बाह्य पदार्थ सब अपने-अपने गुण-पर्यायों में ही वर्तते हैं; वे इस आत्मा में नहीं आते। इसप्रकार जगत के पदार्थ अपने-अपने गुण-पर्यायरूप निजस्वरूप में ही वर्त रहे हैं और अन्य पदार्थ में वे कुछ भी नहीं करते। फिर दूसरा तुझमें क्या करेगा? कुछ भी नहीं करेगा। तो फिर उसके प्रति राग-द्वेष कैसा? भेदज्ञान द्वारा ऐसा वस्तुस्वरूप जानने से ज्ञान, पर के प्रति उदासीन वर्तता हुआ, अपने स्वभाव में ही तत्पर रहता है; इसलिये वह उदासीन ज्ञान-वीतरागी ज्ञान कहीं राग-द्वेष का कर्ता नहीं होता, उपशांत भाव का ही वेदन करता है। जहाँ पर में कर्तृत्व की बुद्धि है, वहाँ राग-द्वेष होते ही हैं और ज्ञान में उदासीन वृत्ति नहीं रहती।

प्रथम, स्व-पर के विभाग और अंतर में स्वभाव तथा परभाव के विभाग करने से ज्ञान पर्याय निजस्वभाव के साथ एकता करे, इसलिये परभाव के प्रति तथा परद्रव्य के प्रति सहज ही उपेक्षावृत्ति होती है; परंतु जिसे स्व-पर के विभाग करना ही न आये, वह कहाँ स्थिर होगा? और कहाँ से पीछे हटेगा? अज्ञानी दौड़धूप और आकुलता से पर में ही उपयोग को भटकाता है, परंतु उपयोग तो मेरा स्वद्रव्य है—इसप्रकार स्व में उपयोग को नहीं लगाता। उसे यहाँ स्पष्ट वस्तुस्वरूप समझाकर भेदज्ञान कराया है कि जो भेदज्ञान होने पर स्वद्रव्य के अवलंबन से उपशांत रस का वेदन होता है।

अरे जीव! तू शांत हो... शांत हो। तेरा ज्ञान ही तेरी शांति का धाम है। दूसरा द्रव्य तेरे ज्ञान में अशांति उत्पन्न नहीं करता तथा दूसरा द्रव्य तुझे शांति भी नहीं देता; इसलिये परद्रव्य में शांति की खोज मत कर और न परद्रव्य के प्रति द्वेष कर। परद्रव्य तेरे ज्ञान को अपनी ओर नहीं खींचते और तेरा ज्ञान भी कहीं आत्मा में से बाहर निकलकर पर में नहीं चला जाता—ऐसी भिन्नता है, तो फिर राग-

द्वेष उत्पन्न होने का स्थान ही कहाँ है ? राग-द्वेष न तो ज्ञान में हैं और न ज्ञेय राग-द्वेष कराते हैं; इसलिये जिसे ज्ञान और ज्ञेय के भिन्न वस्तु स्वरूप की पहिचान है, वह तो ज्ञान में ही तन्मय रहता हुआ, राग-द्वेष में किंचित्मात्र तन्मय न वर्तता हुआ ज्ञान की निराकुल शांति का अनुभव करता है और ऐसे ज्ञानी ही मोक्ष को साधते हैं।

अज्ञानी संयोगों को अनुकूल-प्रतिकूलरूप ही देखते हैं और उनके प्रति राग-द्वेष करके दु:खी होते हैं; परंतु मेरा पदार्थों के साथ संबंध नहीं है, मैं तो ज्ञान हूँ—इसप्रकार यदि तटस्थ ज्ञानरूप ही रहे तो राग-द्वेष रहित उपशांतभाव बना रहे। सुंदर या असुंदर जो बाह्य पदार्थ हैं, वे कहीं ज्ञान में विक्रिया उत्पन्न नहीं करते; जगत के ज्ञेय अपने-अपने स्वभाव से विचित्र परिणतिरूप परिणमित होते हैं और ज्ञान उन्हें अपने स्वभाव से ही जानता है। पदार्थ समीप हो या दूर हो; उससे ज्ञान के ज्ञाता स्वभाव में कोई अंतर नहीं पड़ जाता। ऐसे ज्ञान को जो नहीं जानता, वह अज्ञानी शास्त्र पढ़-पढ़कर भी शास्त्रों के सच्चे फलरूप उपशम को प्राप्त नहीं होता। शास्त्र के सच्चे ज्ञान का तात्पर्य तो उपशम प्राप्ति है; और ऐसे उपशमसहित जीवन ही सच्चा जीवन है। अज्ञानमय राग-द्वेष, वह मरण है; ज्ञानमय वीतराग जीवन ही सच्चा आत्म जीवन है। जिसमें शांति न हो, उसे जीवन कैसे कहा जायेगा ? उसमें तो आत्मा अकुला रहा है... ज्ञानमयभाव से जो शांति का वेदन हो, वह आनंदमय जीवन है।

जिसप्रकार दीपक पदार्थों के प्रति उदासीन है; दीपक के प्रकाश में सोना हो या कोयला, सर्प हो या हार, रोगी हो या निरोगी; वहाँ दीपक तटस्थ ही है; उसे पदार्थों के कारण कोई विक्रिया नहीं होती। कोयला या सर्प आने से उसका प्रकाश धीमा पड़ जाये और सोने का ढ़ेर या हार आने से बढ़ जाये, ऐसा नहीं होता; उसीप्रकार ज्ञान दीपक-चैतन्य दीपक जगत के ज्ञेय पदार्थों के प्रति उदासीन है, राग-द्वेष रहित है। ज्ञान प्रकाश में कोई रोग या निरोग, सोना या कोयला, निंदा के या प्रशंसा के शब्द, सुंदरता या कुरूपता—यह कोई वस्तु राग-द्वेष नहीं कराती, तथा ज्ञान प्रकाश में ऐसा स्वभाव नहीं है कि किसी के प्रति राग-द्वेष करे। भिन्नरूप पृथक्रूप रहकर, मध्यस्थ रहकर, स्वयं अपने ज्ञानभाव में ही रहता हुआ ज्ञान परम उपशांत भाव को प्राप्त होता है।—ऐसा विशुद्धज्ञान ही मोक्ष

फरवरी माह के मुख्य तिथि-पर्व

1 फरवरी - माघ कृष्ण अमावस्या
श्रेयांसनाथ ज्ञानकल्याणक

2 फरवरी - माघ शुक्ल 1-2
भगवान वासुपूज्य ज्ञानकल्याणक

4 फरवरी - माघ शुक्ल 4
भगवान विमलनाथ जन्म-तपकल्याणक

5 फरवरी - माघु शुक्ल 5
बसन्त पंचमी
आचार्य कुन्दकुन्द जन्मदिवस
दशलक्षण पर्व प्रारम्भ

6 फरवरी - माघ शुक्ल 6
भगवान विमलनाथ ज्ञानकल्याणक

8 फरवरी - माघ शुक्ल 8 (अष्टमी)

9 फरवरी - माघ शुक्ल 9
भगवान अजितनाथ तपकल्याणक

11 फरवरी - माघ शुक्ल 10
भगवान अजितनाथ जन्मकल्याणक

12 फरवरी - माघ शुक्ल 11
कविवर बनारसीदास जयन्ती

13 फरवरी - माघ शुक्ल 12
भगवान अभिनन्दन जन्म-तपकल्याणक

14 फरवरी - माघ शुक्ल 13
भगवान धर्मनाथ जन्म-तपकल्याणक
रत्नत्रय व्रत प्रारम्भ

15 फरवरी - माघ शुक्ल 14
दशलक्षण पर्व समाप्त

16 फरवरी - माघ शुक्ल पूर्णिमा
रत्नत्रय व्रत समाप्त

17 फरवरी - फाल्गुन कृष्ण 1
षोडशकारण व्रत समाप्त

20 फरवरी - फाल्गुन कृष्ण 4
भगवान पद्मप्रभ मोक्षकल्याणक

22 फरवरी - फाल्गुन कृष्ण 6
सुपार्श्वनाथ ज्ञानकल्याणक

23 फरवरी - फाल्गुन कृष्ण 7
भगवान चन्द्रप्रभ ज्ञानकल्याणक
भगवान सुपार्श्वनाथ मोक्षकल्याणक

24 फरवरी - फाल्गुन कृष्ण अष्टमी

25 फरवरी - फाल्गुन कृष्ण 9
भगवान पुष्पदन्त गर्भकल्याणक

26 फरवरी - फाल्गुन कृष्ण 10
भगवान ऋषभनाथ ज्ञानकल्याणक

27 फरवरी - फाल्गुन कृष्ण 11-12
भगवान श्रेयांस जन्म-तपकल्याणक
भगवान मुनि सुव्रतनाथ मोक्षकल्याणक

अविनासी अविकार परमरसधाम हैं।
समाधान सरवंग सहज अभिराम हैं।
सुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत हैं।
जगत शिरोमनि सिद्ध सदा जयवंत हैं॥ (समयसार नाटक, छन्द 4)

गतांक से आगे

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

20. उत्पाद पूर्व समासज्ञान—उत्पाद पूर्व समास, उत्पाद पूर्व में वृद्धि होते-होते चौदह वस्तु पर्याय वृद्धि होने पर उसमें एक अक्षर कम करने से उत्पाद पूर्व समास ज्ञान होता है।

इस प्रकार ये अर्थ लिंगज श्रुतज्ञान के बीस भेद हुए।

अब इन बीस भेदों के उत्तर भेदों की संख्या का उल्लेख करते हैं—

1. पर्याय श्रुतज्ञान एक प्रकार है।
2. पर्याय समास श्रुतज्ञान असंख्यात लोकमात्र छह स्थान प्रमाण है।
3. अक्षर श्रुतज्ञान एक प्रकार का है।
4. अक्षर समास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकार का है।
5. पद श्रुतज्ञान एक प्रकार का है।
6. पद समास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकार का है।
7. संघात श्रुतज्ञान एक प्रकार का है।
8. संघात समास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकार का है।
9. प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान एक प्रकार का है।
10. प्रतिपत्ति समास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकार का है।
11. अनुयोग द्वार श्रुतज्ञान एक प्रकार का है।
12. अनुयोग द्वार समास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकार का है।
13. प्राभृत-प्राभृत श्रुतज्ञान एक प्रकार का है।
14. प्राभृत-प्राभृत समास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकार का है।
15. प्राभृत श्रुतज्ञान एक प्रकार का है।
16. प्राभृत समास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकार का है।
17. वस्तु श्रुतज्ञान एक प्रकार का है।
18. वस्तु समास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकार का है।
19. पूर्व श्रुतज्ञान एक प्रकार का है।
20. पूर्व समास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकार का है।

यहाँ श्रुतज्ञान के बीस भेदों में से कौन-सा श्रुतज्ञान कितने प्रकार का है, यह बतलाया है। पर्याय, अक्षर, पद, संघात, अनुयोग द्वार, प्राभृत-प्राभृत, प्राभृत, वस्तु और पूर्व—ये श्रुतज्ञान एक-एक प्रकार के हैं। यह स्पष्ट ही है। अब इनके समास श्रुतज्ञान से पर्याय समास श्रुतज्ञान असंख्यात प्रकार का है। इसमें कोई मतभेद नहीं है। शेष अक्षरसमास आदि श्रुतज्ञानों में यह अवश्य ही विचार उठता है कि उनमें से प्रत्येक में कितने विकल्प होते हैं? यहाँ प्रत्येक में संख्यात विकल्प बतलाए हैं। यह कथन 'अक्षर ज्ञान के ऊपर अक्षर ज्ञान की ही वृद्धि होती है'—इस अभिप्राय को ध्यान में रखकर किया गया है, किन्तु जिनके मत में अक्षर ज्ञान के बाद भी छह वृद्धियाँ स्वीकार की गयी हैं, उनके मत में सब समास ज्ञान असंख्यात प्रकार के प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि यहाँ पहले अक्षर समास आदि सब समास ज्ञानों के असंख्यात भेद बतलाकर बाद में उनके असंख्यात प्रकार के होने की सूचना की है।

इस प्रकार अशब्दलिंगज श्रुतज्ञान के भेदों का वर्णन हुआ।

2. शब्दलिंगज

यहाँ शब्दलिंगज श्रुतज्ञान के भेदों का वर्णन हमें अभीष्ट है। उस शब्दलिंगज श्रुतज्ञान को मुख्यतया द्रव्यश्रुत कहा जाता है, इसे ही आगम भी कहते हैं।

आचार्य उमास्वामी कहते हैं—

'श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम्'

अर्थात् श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। वह दो प्रकार का, अनेक प्रकार का और बारह प्रकार का है।

इसके प्रमुख रूप से दो भेद हैं—**अंगप्रविष्ट** और **अंगबाह्य**। इनमें से अंगप्रविष्ट के बारह तथा अंगबाह्य के अनेक भेद हैं।

अब यहाँ **अंगप्रविष्ट** के बारह भेद बतलाते हैं—

1. आचारांग, 2. सूत्रकृतांग, 3. स्थानांग, 4. समवायांग, 5. व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग, 6. ज्ञातृधर्मकथांग, 7. उपासकाध्ययनांग, 8. अन्तःकृद्दशांग, 9. अनुत्तरोपपादिक अंग, 10. प्रश्नव्याकरणांग, 11. विपाकसूत्रांग, 12. दृष्टिवादांग।

क्रमशः साभार : स्वाध्याय का स्वरूप

विद्वान परिचय शृंखला

गतांक से आगे

कविवर राजमल्लजी

रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

1. कविवर अपने जीवनकाल में अनेक बार मथुरा गये थे। जब ये प्रथम बार मथुरा गये, तब इनकी विद्वत्ता के साथ कवित्वशक्ति पर्याप्त प्रकाश में आ गई थी। अतएव वहाँ की एक सभा में इनसे जम्बूस्वामीचरित को लिपिबद्ध करने की प्रार्थना की गई। इस ग्रन्थ के रचे जाने का यह संक्षिप्त इतिहास है। यह ग्रंथ वि.सं. 1633 के प्रारम्भ के प्रथम पक्ष में लिखकर पूर्ण हुआ है। इस ग्रंथ की रचना कराने में भटानियाँकोल (अलीगढ़) निवासी गर्गगोत्री अग्रवाल टोडर साहू प्रमुख निमित्त हैं। ये वही टोडर साहू हैं, जिन्होंने अपने जीवनकाल में मथुरा के जैनस्तूपों का जीर्णोद्धार कराया था। इनका राजपुरुषों के साथ अति निकट का सम्बन्ध (परिचय) था। उनमें कृष्णामंगल चौधरी और गढ़मल्ल साहू मुख्य थे।

2. इसके बाद पर्यटन करते हुए कविवर कुछ काल के लिये नागौर भी गये थे। वहाँ इनका सम्पर्क श्रीमाल ज्ञातीय राजा भारमल्ल से हुआ। ये अपने काल के वैभवशाली प्रमुख राजपुरुष थे। इन्हीं की सत्प्रेरणा पाकर कविवर ने पिंगलग्रंथ—छन्दोविद्या ग्रंथ का निर्माण किया था। यह ग्रंथ प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और तत्कालीन हिंदी का सम्मिलित नमूना है।

3. तीसरा ग्रंथ लाटीसंहिता है। मुख्य रूप से इसका प्रतिपाद्य विषय श्रावकाचार है। जैसा कि मैं पूर्व में निर्देश कर आया हूँ कि ये भट्टारक परंपरा के प्रमुख विद्वान थे। यही कारण है कि इसमें भट्टारकों द्वारा प्रचारित परंपरा के अनुरूप श्रावकाचार विवेचन प्रमुखरूप से हुआ है। 28मूलगुणों में जो षडावश्यक कर्म हैं, पूर्वकाल में व्रती श्रावकों के लिये ही षडावश्यक कर्म देशव्रत के रूप में स्वीकृत थे। उनमें दूसरे कर्म का नाम चतुर्विंशतिस्तव और तीसरा कर्म वंदना है। वर्तमान काल में जो दर्शन-पूजनविधि प्रचलित है, यह उन्हीं दो आवश्यक कर्मों का रूपांतर है। मूलाचार में वंदना के लौकिक और लोकोत्तर ये दो भेद दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें से लोकोत्तर वंदना को कर्मक्षपण का हेतु बतलाया गया है। स्पष्ट है कि लौकिक वंदना मात्र पुण्य बंध का हेतु है। इन तथ्यों पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि पूर्वकाल में ऐसी ही लौकिक विधि प्रचलित थी, जिसका लोकोत्तर विधि के साथ सुमेल था। इस समय उसमें जो

विशेष फेरफार दृष्टिगोचर होता है, वह भट्टारकीय युग की देन है। लाटीसंहिता की रचना वैराटनगर के श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ मंदिर में बैठकर की गयी थी। रचनाकाल वि. सं. 1641 है। इसकी रचना कराने में साहू फामन और उनके वंश का प्रमुख हाथ रहा है।

4. चौथा ग्रंथ अध्यात्मकमलमार्त्तण्ड है। यह भी कविवर की रचना मानी जाती है। इसकी रचना अन्य किसी व्यक्ति के निमित्त से न होकर स्वसंवित्ति को प्रकाशित करने के अभिप्राय से की गयी है। यही कारण है कि इसमें कविवर ने न तो किसी व्यक्ति विशेष का उल्लेख किया है और न अपने संबंध में ही कुछ लिखा है। इसके स्वाध्याय से विदित होता है कि इसकी रचना के काल तक कविवर ने अध्यात्म में पर्याप्त निपुणता प्राप्त कर ली थी। यह इसी से स्पष्ट है कि इसके दूसरे अध्याय का प्रारंभ करते हुए यह स्पष्ट संकेत करते हैं कि पुण्य और पाप का आस्रव और बंध तत्त्व में अंतर्भाव होने के कारण इन दो तत्त्वों का अलग से विवेचन नहीं किया है। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से जो प्रौढ़ता पंचाध्यायी में दृष्टिगोचर होती है, उसकी इसमें एक प्रकार से न्यूनता ही कही जायेगी। आश्चर्य नहीं कि यह ग्रंथ अध्यात्मप्रवेश की पूर्वपीठिका के रूप में लिखा गया हो। अस्तु,

5 से 7. जान पड़ता है कि कविवर ने पूर्वोक्त चार ग्रंथों के सिवाय तत्त्वार्थसूत्र और समयसार कलश की टीकाएँ लिखने के बाद पंचाध्यायी की रचना की होगी। समयसार-कलश की टीका का परिचय तो हम आगे करानेवाले हैं, किंतु तत्त्वार्थसूत्र टीका हमारे देखने में नहीं आई, इसलिए वह कितनी अर्थगर्भ है, यह लिखना कठिन है। रहा पंचाध्यायी ग्रंथराज सो इसमें संदेह नहीं कि अपने काल की संस्कृत रचनाओं में विषय प्रतिपादन और शैली इन दोनों दृष्टियों से यह ग्रंथ सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसे तो समाज का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि कविवर के द्वारा ग्रंथ के प्रारंभ में की गई प्रतिज्ञा के अनुसार पाँच अध्यायों में पूरा किया जानेवाला यह ग्रंथराज केवल डेढ़ अध्याय मात्र लिखा जा सका। इसे भगवान कुन्दकुन्द और आचार्य अमृतचंद्र की रचनाओं का अविकल दोहन कहना अधिक उपयुक्त है। कविवर ने इसमें जिस विषय को स्पर्श किया है, उसकी आत्मा को स्वच्छ दर्पण के समान खोलकर रख दिया है। इसमें प्रतिपादित अध्यात्मनयों और सम्यक्त्व की प्ररूपणा में जो अद्‌भुत विशेषता दृष्टिगोचर होती है, उसने ग्रंथराज की महिमा को अत्यधिक बढ़ा दिया है, इसमें संदेह नहीं। ●

प्रेरक-प्रसंग

'निराला' की माँ कभी भीख नहीं माँगती

महाकवि निराला एक पुस्तक का परिश्रमिक पाँच सौ रुपये लेकर आ रहे थे। इतने में एक भिखारिन बुढ़िया ने उन्हें देखकर कहा–

'बेटा! भूखी गरीब बुढ़िया को कुछ मिल जाये।'

'तुमने बेटा कहा है माँ ! पर महाकवि निराला की माँ कभी भीख नहीं माँगती। तुम्हें एक रुपया दिया जाये तो कब तक भीख नहीं माँगोगी ?'

'बेटा! आज दिन भर।'

'और यदि पाँच रुपये दिए जायें तो।'

'बेटा! आठ दिन तक नहीं माँगूँगी।'

'और तुम्हें इकट्ठे पाँच सौ रुपये दे दिए जायें तो कब तक भीख नहीं माँगोगी ?'

'जिन्दगी भर।'

निराला ने लाये हुए पूरे पाँच सौ रुपये जेब से निकालकर उस बुढ़िया को दे दिये। और कहा– 'माँ! अब कभी भीख मत माँगना।'

बुढ़िया 'हाँ' कहकर आशीष देती हुई चली गई।

शिक्षा– दया तो वही है, जो दूसरों के दुख में सहभागी हो।

कीमत गुण की या सुन्दर शरीर की ?

महात्मा गाँधी को दीनबंधु एंड्रूज से कुछ काम था। सब दूर खोज की किन्तु एंड्रूज का कहीं पता नहीं चला। किसी ने कहा– वे आज गिरजाघर में होंगे। गाँधीजी ने कहा–उनके चिंतन सुनने के लिए मैं गिरजाघर ही चलता हूँ। गिरजाघर जाने पर चौकीदार ने गाँधीजी को रोकते हुए कहा– यह गिरजाघर गोरों के लिए ही है, काले आदमी का इसमें प्रवेश वर्जित है। गाँधी जी बाहर ही बैठ गए। इतने में एंड्रूज भी आ गये। उन्होंने आश्चर्य से पूछा– गाँधी जी, आप यहाँ? गाँधी जी ने कहा– मैं तो आपका प्रवचन सुनने के लिए आया था। दीनबंधु यह सुनकर रो पड़े और कहने लगे– आज आपके जीवन पर ही मेरा व्याख्यान था।

शिक्षा– मिट्टी के शरीर के भेद ने मनुष्यों को जड़ प्रेमी बना दिया है। इस भेद में जब गुणी की कीमत नहीं तो गुण पूजा कहाँ से हो सकती है ?

"जिस प्रकार–उसी प्रकार" में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– किसी को सर्प काटे और किसी दूसरे को जहर चढ़े तो अचरज मानते है, कहते है झूठ बोल रहा है।

उसी प्रकार– जड़ शरीर खाये, पहने, स्नान, तेल मर्दन आदि क्रिया करे, वहां तू कहता है कि मैने खाया, मैने भोगा ये तो सब जड़ की क्रिया है, झूठ क्यों बोलता है? झूठ बालने से तो पाप बंध होता है।

जिस प्रकार– कोई बाजार जाये वहां जवाहरात की दुकान देखकर कहे यें जवाहरात मेरे है, तो उससे कहते है, तू पागल है, हट, आगे चल।

उसी प्रकार– इस जीव को घर, स्त्री, पुत्र, परिवार, दिखाई देवे सो कहे ये मेरे है; तो ज्ञानी कहते है तू पागल है, मूढ़ है, ये तो पर वस्तु है, तेरी कहां है?

जिस प्रकार– नौकर के भोजन करने से राजा तृप्त नहीं होता।

उसी प्रकार– शरीर के भोजन करने से आत्मा तृप्त नहीं होता।

जिस प्रकार– मोतियों को प्राप्त करने के लिए समुद्र में प्रवेश करना होता है।

उसी प्रकार– आत्म विभूतियों को प्राप्त करने के लिए आत्मा में प्रवेश करना होता है, रमण करना होता है।

जिस प्रकार–किसी भी सिद्धक्षेत्र पर जाने के लिए, रास्ता पता होने पर तथा चल देने पर भी कुछ समय लगता है। पहुंचने का समय इस बात पर निर्भर करता है कि हम क्षेत्र से कितनी दूर रहते है तथा किस रफ्तार (वाहन) से जा रहे हैं; रास्ते में, जो अन्य शहर आते है उनमें रूकते है या नहीं ।

उसी प्रकार– मोक्षी रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए उसका रास्ता पता होना चाहिए, फिर उस पर चलना होता है। वहां पहुंचेगे वो इस बात पर निर्भर करेगा कि हमारा पुरुषार्थ कितना तीव्र है; बीच में शुभ भाव भी आयेंगे, वहाँ रूके तो समय अधिक लगेगा ।

जिस प्रकार– मिश्री सर्वांग मीठी होती है।

उसी प्रकार– आत्मा सर्वांग ज्ञानवान होता है।

क्रमशः **संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की**

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन का 19वाँ वार्षिकोत्सव सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : पूज्य गुरुदेवश्री के मंगल प्रभावनायोग में निर्मित तीर्थधाम मंगलायतन का 19वाँ वार्षिकोत्सव अनेक कार्यक्रमों के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ। तीर्थधाम मंगलायतन विगत 19 वर्षों में नये-नये कीर्तिमानों को रचते हुए जिन प्रभावनायोग में निरन्तर आगे-आगे ही बढ़ रहा है। उसी शृंखला में वार्षिकोत्सव के अवसर पर निम्न कार्यक्रम आयोजित किये गये।

प्रातःकाल में पूज्य गुरुदेवश्री के द्वारा मांगलिक छहढाला मंगलाचरण पर, जिनेन्द्र प्रक्षाल, पूजन, श्री महावीर पंच कल्याणक विधान; दोपहर में धवला वाचना- बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन; सायंकालीन जिनेन्द्र भक्ति श्रीमती बीना जैन देहरादून, श्री अभिषेक जैन, श्री आर्जव जैन, श्री वरांग जैन, श्री सौधर्म जैन, श्री ऋषभ जैन, श्रीमती अनुभूति जैन आदि; स्वाध्याय-पण्डित सचिन जैन (पंच कल्याणक विषय पर), मूलाचारजी वाचना, समयसार कलश उच्चारण सहित सानन्द सम्पन्न हुआ।

इस आयोजन में श्री जैनबहादुर जैन कानपुर, श्री अनिल जैन बुलन्दशहर, श्री अम्बुज जैन मेरठ, श्री विनय ओसवाल, श्री मुकेश जैन अलीगढ़, डॉ. योगेश जैन अलीगंज तथा सम्पूर्ण मंगलायतन परिवार उपस्थित था। विधि-विधान का सम्पूर्ण कार्यक्रम पण्डित ऋषभ जैन, डॉ. विवेक जैन, श्री अनुज जैन एवं उनकी समस्त टीम छिन्दवाड़ा का ऑनलाइन और ऑफलाइन के माध्यम से मंगलार्थी छात्रों सहित अनेकानेक साधर्मी भाई-बहिनों ने धर्म लाभ लिया।

चतुर्थ पुस्तक की वाचना 25 अक्टूबर 2021 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं सहयोगी बहिनों तथा मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होगा।

दोपहर	01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)	**षट्खण्डागम (धवलाजी)**
रात्रि	07.30 से 08.30 बजे तक	मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय
	08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्चारण सहित सामान्यार्थ**

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - mang4321 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

वैराग्य समाचार

जयपुर : श्री नेमिचन्द गोधा का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आप जिनवाणी को समर्पित कार्यकर्ता थे।

मुम्बई : श्री कनुभाई मूलचन्द दोशी का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आपने गुरुदेवश्री द्वारा प्रसारित तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ लिया। आप श्री बसन्तभाई दोशी, मुम्बई के लघुभ्राता थे।

हाथरस : श्री सुमतप्रकाश जैन का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आप धार्मिक एवं सामाजिक उत्थान हेतु प्रयासरत थे। तीर्थधाम मंगलायतन के प्रति आपको अगाध वात्सल्य था। आप यहाँ की प्रत्येक गतिविधियों में सपरिवार शामिल होते थे। आपके परिवार द्वारा तीर्थधाम मङ्गलायतन में विजयलक्ष्मी भोजनालय संचालित है। आपके देहपरिवर्तन से मंगलायतन को अपूरणीय क्षति हुई है।

बंडा : श्रीमती जयन्तीबाई का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आप पण्डित स्वरूपचंदजी बंडा की धर्मपत्नी थीं। आप धार्मिक संस्कारों से सम्पन्न, पूज्य गुरुदेवश्री प्राप्त तत्त्वज्ञान से ओतप्रोत महिला थीं।

उगार (कर्नाटक) : श्री अशोक बन्नूरे का अकस्मात देहपरिवर्तन हो गया है। आप टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महविद्यालय जयपुर के उपाध्याय वरिष्ठ के छात्र शान्तिनाथ बन्नूरे के पिताश्री थे।

अछरौनी (खनियांधाना) : श्रीमती कमालबाई का देहपरिवर्तन शान्त-परिणामोंपूर्वक हो गया है। आप पण्डित रमेश दाऊ जयपुर की माता थीं। आप देव-गुरु-शास्त्र की आराधना में हमेशा तत्पर रहती थी और पूज्य गुरुदेवश्री प्राप्त तत्त्वज्ञान से लाभान्वित थीं।

दिवंगत आत्माएँ शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

तीर्थधाम मंगलायतन से प्रकाशित एवं उपलब्ध साहित्य सूची

मूल ग्रन्थ–

1. समयसार वचनिका
2. प्रवचनसार (हिन्दी, अंग्रेजी)
3. नियमसार
4. इष्टोपदेश
5. समाधितंत्र
6. छहढाला (हिन्दी, अंग्रेजी सचित्र)
7. मोक्षमार्ग प्रकाशक
8. समयसार कलश
9. अध्यात्म पंच संग्रह
10. परम अध्यात्म तरंगिणी
11. तत्त्वज्ञान तरंगिणी
12. हरिवंशपुराण वचनिका
13. सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन

1. प्रवचनरत्न चिन्तामणि
2. मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन
3. प्रवचन नवनीत
4. वृहद्द्रव्य संग्रह प्रवचन
5. आत्मसिद्धि पर प्रवचन
6. प्रवचनसुधा
7. समयसार नाटक पर प्रवचन
8. अष्टपाहुड़ प्रवचन
9. विषापहार प्रवचन
10. भक्तामर रहस्य
11. आतम के हित पंथ लाग!
12. स्वतंत्रता की घोषणा
13. पंचकल्याणक प्रवचन
14. मंगल महोत्सव प्रवचन
15. कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन
16. छहढ़ाला प्रवचन
17. पंचकल्याणक क्या, क्यों, कैसे?
18. देखो जी आदीश्वरस्वामी
19. भेदविज्ञानसार
20. दीपावली प्रवचन
21. समयसार सिद्धि
22. आध्यात्मिक सोपान
23. अमृत प्रवचन
24. स्वानुभूति दर्शन
25. साध्य सिद्धि का अचलित मार्ग

पण्डित कैलाशचन्द्रजी का साहित्य

1. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला (भाग 1 से 7) (हिन्दी गुजराती)
2. मंगल समर्पण

अन्य

1. फोटो फ्रेम (पूज्य गुरुदेवश्री, बहिनश्री)

2. सी.डी.

3. मंगल भक्ति सुमन
4. मंगल उपासना
5. करणानुयोग प्रवेशिका
6. धन्य मुनिदशा
7. धन्य मुनिराज हमारे हैं!
8. प्रवचनसार अनुशीलन

बाल साहित्य (कॉमिक्स)

1. कामदेव प्रद्युम्न
2. बलिदान

आद. पवनजी की स्मृति में उपरोक्त साहित्य सभी मन्दिरों, ट्रस्ट, संस्थानों, विद्यालयों, पुस्तकालयों और साधर्मी भाई–बहिनों को स्वाध्यायार्थ निःशुल्क दिया जायेगा। सम्पर्क – सम्पर्कसूत्र – पण्डित सुधीर शास्त्री, 9756633800; डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, 7581060200

Email : info@mangalayatan.com

– डाकखर्च आपका रहेगा।

चिदायतन सहयोग

- परम शिरोमणी संरक्षक	रुपये 11.00 लाख
- शिरोमणी संरक्षक	रुपये 05.00 लाख
- परम संरक्षक	रुपये 02.00 लाख 51.00 हजार
- संरक्षक	रुपये 01.00 लाख

तीर्थधाम चिदायतन संकुल में 206096.26 वर्ग फीट का निर्माण प्रस्तावित है। देव-शास्त्र-गुरु की उत्कृष्ट धर्मप्रभावना हेतु निर्मित हो रहे इस संकुल के निर्माण में आप एवं आपका परिवार, रुपये 2100.00 प्रति वर्ग फीट की सहयोग राशि प्रदान कर, तीर्थ निर्माण के सर्वोत्कृष्ट कार्य में सहभागी हो सकते हैं।

दानराशि में आयकर की छूट

भारत सरकार ने, श्री शान्तिनाथ-अकम्पन-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट को दान में दी जानेवाली प्रत्येक राशि पर, आयकर अधिनियम वर्ष 1961, 12-ए के अन्तर्गत धारा 80 जी द्वारा छूट प्रदान की गयी है।

नोट - आप अपनी राशि सीधे बैंक में जमा करा सकते हैं, अथवा निम्न नाम से Cheq./Draft भेज सकते हैं।

NAME	:	SHRI SHANTINATH AKAMPAN KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	PARIYAVALI, ALIGARH
A/C. NO.	:	7969002100000194
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0796900

तीर्थधाम मङ्गलायतन के वार्षिकोत्सव की झलकियाँ

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

लोकोत्तर मुनिदशा

इतनी पाठशालाओं में एक घण्टे तक तो पढ़ाना ही होगा, पाठशाला अथवा मन्दिर के लिए इतने रुपयों का चन्दा तो करना ही पड़ेगा, व्याख्यान भी देना होगा, पत्रों में लेख छपवाना पड़ेंगे – अरे! यह सब मुनिदशा का काम नहीं है। मुनि की दशा ही कोई लोकोत्तर होती है। मुनिदशा तो कार्य के भाररहित, मात्र निज ज्ञायकतत्त्व में ही लीन, अपने ज्ञान-आनन्दादि गुणों में ही रमणशील तथा निरावलम्बन स्वभाववाली होती है।

(– वचनामृत प्रवचन, २/३५८)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust

Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com